धर्म और अर्थ का सम्बन्ध

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतीय संस्कृति धर्म और आचार प्रधान संस्कृति है, दूसरों को सम्मान देने वाली संस्कृति है। इस संस्कृति में किसी से घृणा न करने की शिक्षा दी गयी है। यह जोड़ने वाली संस्कृति है। इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। अध्यात्म के संस्कारों से युक्त यह संस्कृति है। यह संस्कृति पुरुषार्थ चतुष्टय में विश्वास करती है। काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष जीवन के चार पुरुषार्थ है। काम शरीर की आवश्यकता है। शरीर की सात धातुएं भोजन से बनती है। उनमें वीर्य भी एक प्रमुख धातु है। वीर्य से प्रजनन और वंश उत्पत्ति होती है। जब शरीर युवा होता है तो कामशक्ति बढ़ती है। काम शक्ति के बढ़ने से स्त्री और पुरुष में एक दूसरे के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। इसीलिए हमारे देश में विवाह की प्रथा प्रारम्भ की गई है। भारतीय संस्कृति में विवाह भी एक संस्कार है। विवाह के द्वारा स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। यह एक ऐसा बन्धन है जो स्त्री और पुरुष को आजीवन एक सूत्र में जोड़े रहता है। सृष्टि की प्रक्रिया भी इसी संस्कार से प्रारम्भ हो जाती है। अर्थ का भी जीवन में बहुत मूल्य है। अर्थ के बिना भौतिक जीवन सम्भव नहीं है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति अर्थ के माध्यम से होती है। जीवन निर्वाह करना पढ़ाई, लिखाई, गृह निर्माण या इस प्रकार की जितनी भी आवश्यकताएं होती है सबका सम्बन्ध अर्थ से ही है। अर्थ उचित रीति से ही कमाया जाना चाहिए, अनुचित रीति से नहीं। यदि अनुचित रूप से कमाया जाता है तो अर्थ अनर्थ बन जाता है। धर्म एक पूल का काम करता है। काम और अर्थ का सम्बन्ध धर्म के माध्यम से होना चाहिए। धर्म के मार्ग पर चलकर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य होता है। मोक्ष की प्राप्ति में सभी दुःख समाप्त हो जाते है। इसको एक उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। किसी फैक्ट्री का मालिक जब फैक्ट्री का निरीक्षण करने जाता हैं तब सभी कर्मचारी सावधानी से कार्य करने लगते है। हमारे शरीर में आत्मा ज्ञाता और द्रष्टा है। धर्म वस्तु के स्वभाव को कहते हैं।

मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो यह एक बड़ा प्रश्न है। योगी हो या भोगी सभी यह चाहते है कि उनके जीवन का अन्त अच्छा हो। किन्तु अपने–अपने कर्मों के अनुसार सबको फल प्राप्त होता है और कर्मों के अनुसार ही चौरासी लाख जीव योनियों में भटकना पड़ता है। सुख–दुःख जीवन में आने वाले दो पड़ाव हैं। अपने प्रारब्ध के अनुसार या कृत कर्मों के अनुसार सबको सुख–दुःख भोगना पड़ता है। कर्मबन्ध के पांच कारण माने गये हैं– मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। इन्हीं पांचों को बंध का कारण माना गया है। कषाय और योग को बंध का कारण कहा गया है। मिथ्यादर्शन विपरीत श्रद्धान है। मिथ्यादर्शन के कारण तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान नही होता। जीवादि पदार्थों का श्रद्धान न करना

मिथ्या दर्शन है। विरति का अभाव अविरति है। हिंसा आदि पांच पापों को नहीं छोड़ना या अहिंसादि पांच व्रतों का पालन न करना अविरति है। प्रमाद का अर्थ है उत्कृष्टरूप से आलस्य का होना। क्रोधादि के कारण जीव की सत्कर्मों में रुचि नहीं होती। इसीलिए सकषाय अवस्था को प्रमाद कहा गया है।

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आत्मा को कुगति में ले जाने के कारण आत्मा के स्वरूप को कसते हैं, इसलिए इन्हें कषाय कहा जाता है। चारित्र परिणाम के कसने के कारण भी ये कषाय कहलाते हैं। मन, वचन और काय के द्वारा होने वाले आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं। इन्हीं के कारण कर्म आत्मा से बंधते हैं। प्रायः सभी दार्शनिक मिथ्याज्ञान या अविद्या को बन्ध का कारण स्वीकार करते हैं। भारतीय दर्शन में अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय है, जिन्होंने बन्धन का विवेचन किया है। बन्ध होता है, इसे सभी भारतीय दार्शनिक स्वीकार करते हैं। जो पापकर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियां शान्त नहीं हैं, जो असमाहित है और जिसका चित्त शान्त नहीं है वह आत्मा को नहीं जान सकता और आत्मज्ञान के बिना वह बन्धन में ही रहता है। बन्धग्रस्त जीव को आत्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो ही नहीं पाता। जो प्रमाद करने वाले हैं अर्थात् जिनका चित्त पुत्र–पशु आदि प्रयोजनों में आसक्त है और जो धन के मोह में आवृत्त हैं, उनको सत्य का स्वरूप नहीं दिखायी पड़ता है। यह दृश्यमान लोक ही सबकुछ है, इससे अन्य और कुछ नहीं है, जो पुरुष इस प्रकार मानने वाला है वह बारम्बार जन्मलेकर मृत्यु के पाश से बधता है। सकाम कर्मों को बन्धन का कारण माना गया है। सकामकर्मों को करते हुए ही अज्ञानी लोग अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। सांसारिक कर्मों में लगे हुए मनुष्यों की भोगों में अत्यन्त आसक्ति होती है, इस कारण वे सांसारिक उन्नति के सिवा कल्याण की ओर दृष्टि ही नहीं डाल पाते और परमात्म प्राप्ति के लिये चेष्टा न करके जन्म–मृत्यु के चक्र में फसे रहते हैं और आत्मा के वास्तविक रूप को नहीं जान पाते। काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे विकार जब तक मन में रहते हैं तब तक मन शुद्ध नहीं हो पाता। जैसे ही आत्मा के ऊपर से कर्मों का आवरण हटता है, आत्मा अपने शुद्ध रूप में अवस्थित हो जाता हैं यही आत्मा की मुक्तावस्था है। अर्थ और धर्म का सम्बन्ध सोने में सुहागा है। अर्थ का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। धर्म और अर्थ में समन्वय होना चाहिए। अर्थ जिनके पास नहीं है, उनको आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराकर उन्हें मुसीबतों से उबारना ही धन का सदुपयोग है।